ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-3* Issue-3*April- 2018
Innovation The Research Concept

ललित कला का इतिहास और एशियाई सभ्यता

रश्मि बाजपेई
शोध छात्रा
कला विभाग,
कालेज
कानपुर

सारांश

किसी भी देश की संस्कृति उसकी आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक उपलब्धियों की प्रतीक होती हैं। यह संस्कृति उस सम्पूर्ण देश के मानसिक विकास को सूचित करती है। संस्कृति का रूप देश तथा काल की परिस्थितियों के अनुसार ढलता है। संस्कृति का रचनाक्रम भूत, वर्तमान भविष्य में निरन्तर संचारित होता रहता है।

मुख्य शब्द : वैज्ञानिक, मानव संस्कृति, चित्रकला

प्रस्तावना

मानव संस्कृति का कलात्मक तथा अध्यात्मिक विकास उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना वैज्ञानिक उपलब्धियों का कलात्मक विकास में मुख्यतः साहित्य, कला अथवा शिल्प स्थापत्य संगीत, मूर्ती, नृत्य एवं नाटक का विशेष महत्व है। कला के द्वारा देश के समाज दर्शन तथा विज्ञान की यथोचित छवि प्रतिबिम्बित हो जाती है। चित्रकला का इतिहास उतना ही पुराना कहा जा सकता है जितना मानव इतिहास। आदिकाल से आज तक मनुष्य रेखा तथा आकार, तक्षण तथा कर्षण के द्वारा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता चला आ रहा है। मानव ने रेखा और आकार के माध्यम से अपनी प्रगति आत्मा युग का सदैव स्वागत एवं चित्रांकन किया है। इन असंख्य चित्रकृतियों के आधार पर चित्रकला की आज ऐ निश्चित परिभाषा निर्धारित हो चुकी है। ''चित्रकला के इतिहास में रेखांकन विधि कितनी प्राचीन है, इसका अनुमान लगाना कठिन है। अनुमानतः इसका श्री गणेश प्रागैतिहासिक गुहा चित्रों से हुआ होगा।''[1]

पाषाणयुग के मनुष्यों अपने चारों ओर के वातावरण की संस्कृति को बनाये रखने के लिये तथा अपने विजय का इतिहास व्यक्त करने की भावना से वशीभूत होकर इन चित्रकृतियों का निर्माण किया। इन चित्रों में आदिमानव का दैनिक जीवन परिलक्षित होता है। प्रागैतिहासिक काल में चित्रों के समस्त चित्र उदाहरण लाल, काले या पीले और सफेद रंगों से बने है। यह चित्र चट्टानों की दीवारों, गुफाओं के फर्शो, भित्तियों या छतों में बनाये गये है। अधिकांश आकृतियों के निर्माण में सीधी रेखा, वक्र और आयत आदि ज्यामितीय आकारों का प्रयोग है। कई ज्यामितीय आकारों को सांकेतिक रूप में प्रयोग किया जाता है।

प्रागैतिहासिक काल से समाप्त होते ही धातु युग के साथ वैदिककाल का उदय होता है। इस समय की कला के उदाहरण बहुत कम है। केवल मोहनजोदड़ों तथा हड़प्पा क्षेत्र की खुदाई से कांस्ययुग की कला के उदाहरण प्राप्त होते है। मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा सिन्धु नदी घाटी में स्थित थे और इसी कारण यहाँ पर एक उच्च सभ्यता विकसित हुयी। ''सिन्धु सभ्यता में चित्रमय लिपि का विकास हो चुका था जिसमें 366 चिन्हों का प्रयोग अनुमानित है।''[2]

इन नगरों के अवशेष मात्र रह जाने के चित्रकला का ठीक ज्ञान नहीं होता है। इन नगरों में प्राप्त बर्तनों पर लोककला की चित्रकारी के नमूने ही प्राप्त होते है जिनसे चित्रकला के प्रचलन तथा यथोचित उन्नत स्तर का अनुमान लगाया जा सकता है। सिन्धु घाटी के उपरान्त वैदिक काल में चित्रकला की प्रगति का ज्ञान साहित्यिक रचनाओं जैसे वेदों, महाभारत, रामायण या पुराणों से प्राप्त होता है।

दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व तक वैदिक साहित्य की रचनाओं का काल समाप्त हो जाता है और उनका स्थान बौद्ध धर्म ले लेता है। भारतवर्ष का यह स्वर्ण युग था। देश के समस्त भागों पर ज्ञान तथा दर्शन का विकास हुआ किन्तु बौद्ध धर्म का प्रभाव संस्कृति के किसी भी अन्य पक्ष पर इतना नहीं पड़ा जितना कि चित्रकला पर दिखाई देता है।

तारानाथ, जो सोलहवी शताब्दी का तिब्बती इतिहासकार था, ने यह उल्लेख किया है कि जहाँ–जहाँ बौद्ध धर्म फैला वहीं–वहीं दक्ष कलाकार पाये

गयें। जिस प्रकार बौद्ध धर्म के प्रवर्तक बुद्ध की जन्मभूमि है उसी प्रकार यह भी निश्चित है कि भारत बुद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्रकला का उदगम स्थल है। भारत में अजन्ता, बाघ, बादामी तथा सित्तनवासल में बौद्धकला का प्रभाव है। श्रीलंका में सिंघिरिया भी इसी कला का उदाहरण है। सातवीं शताब्दी में बौद्धकला में पतन के चिन्ह दिखायी देने लगे जिसका प्रभाव देश की कला तथा साहित्यिक रचनाओं पर पड़ा। दूसरी ओर सातवीं शताब्दि से ही धार्मिक क्षेत्र में एक नवीन क्रान्ति आयी। बौद्ध धर्म का स्थान हिन्दू धर्म में ले लिया।

अध्ययन का उद्देश्य

ललित कला ही ऐसी कला है जिसमें मानव मन में संवेदनायें उभारने, प्रवृत्तियों को ढालने तथा चिन्तन को मोडने, अभिरूचि को दिशा देने की अद्भुत क्षमता है। मनोरंजन सौन्दर्य, प्रवाह, उल्लास न जाने कितने तत्वों से यह भरपूर है। जिसमें मानवीयता को सम्मोहित करने की शक्ति है। ललित कला में ऐसी शक्ति है कि वह लोगों को संकीर्ण सीमाओं से ऊपर उठाकर उसे ऐसे ऊँचे स्थान पर पहुँचा देती है जहाँ मनुष्य स्वार्थ, परिवार, क्षेत्र, धर्म, भाषा और जाति आदि की सीमायें मिटा कर विस्तृत और व्यापकता पूर्ण बन जाता है।

पूर्व मध्यकाल की चित्रकला में एलोरागुफा प्रमुख है। प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थ विष्णुधर्मोत्तरपुराण, मानसार, चित्रलक्षण प्रमुख है। उत्तर मध्यकाल की कला में चित्रकला मन्द पड़ गयी, सिर्फ ग्रन्थों से ही चित्रकला का पर्याप्त प्रसंग प्राप्त होता है। इसी समय पाल शैली तथा जैन शैली विकसित हुयी। मध्यकाल चित्रकला के लिये उपयुक्त न था। 15वीं शताब्दि में चित्रकला के लिये पुनः नया दौर आया जब भारत में मुगलों का प्रवेश हुआ, उनके साथि आये मशहूर चित्रकारों ने भारत में चित्रकला का नया आयाम प्रस्तुत किया। इस्लामी चित्रकला में अलंकारिक आलेखनों या ज्यामितीय तरहों का रूप निखर कर आया। मुगलशासकों बाबर, हुँमायूँ, अकबर तथा जहाँगीर ने कला को बढ़ावा दिया परन्तु बाद में कला निम्न स्तर को प्राप्त होती गयी। मशहूर ईरानी चित्रकारों, मीर सैय्यद अली तथा ख्वाजा अब्दूइस्मद "शिराजी ने अकबर तथा हुमायूँ को चित्रकला का प्रशिक्षण दिया।"[3]

स्व0 आनन्द कुमार स्वामी के अनुसार लघु चित्र दो भागों में पाये गये, मुगलशैली के चित्र तथा राजपूत शैली के चित्र। राजस्थानी चित्रों का मूल स्त्रोत लोक चित्रकला या प्राचीन राजपूत सभ्यता से विकसित अपभ्रन्स या जैन शैली है। इसी कारण इस शैली में पूर्णतः भारतीय भित्ती चित्रण की शैली परम्परा दिखाई पड़ती है। राजस्थानी शैली कुछ प्रमुख शैलियों में विभाजित हुयी जो मेवाड, बूंदी, किशनगढ़, जयपुर तथा बिकानेर शैलियाँ है। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी के नाथ द्वारा में बनाये गये चित्र वैष्णव धर्म के प्रचार के लिये सम्पूर्ण राजस्थान तथा गुजरात में बांटे जाते थे।[4]

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पंजाब और हिमालय की सुरमयी घाटियों से एक परमपरागत और उन्नतिशील भारतीय कलाशैली के चित्र उदाहरण प्राप्त हुये है। यह पहाड़ी चित्र शैलियाँ पहाड़ी क्षेत्रों के ठाकुर राजाओं की ठाकुराईयों में विकसित हुयी। इस कृतियों में पहाड़ी आत्मा का सौन्दर्य, वैभव तथा यौवन मुखरित हुआ।

मुगलकाल के पतन के उपरान्त वहाँ के हिन्दू तथा मुसलमान चित्रकार आश्रय के लिये पहाड़ो की ओर अग्रसर हुये। वहीं पहाड़ी राजाओं के आश्रय में नवीन कला शैली पहाड़ी शैली का उदय हुआ। बसोहली, गुलेर, चम्बा, कांगड़ा, कुल्लू, मंडी, जम्मू–कश्मीर, गढ़वाल शैली की चित्रकला प्रमुख है।

18वीं शताब्दी के अन्त में और 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में लखनऊ में एक भिन्न प्रकार की चित्रण शैली प्रचलित हो गयी जो रूमीकलम के नाम से प्रचलित हुयी। इस कला स्कूल ने प्राचीन कला शैली का कुछ उत्तम विशेषताओं का प्रतिपादन किया। आधुनिक भारतीय कला का प्रारम्भ 1895 से 1920 मध्य प्रचलित कला शैली से माना जाता है। मुगल साम्राज्य के पतन व ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आगमन से कम्पनी शैली का प्रारम्भ हुआ। कम्पनी के अधिकारी भारतीय संस्कृति से प्रभावित हुये और यूरोपीय कला तत्वों का प्रयोग करके कम्पनी शैली विकसित की।

पटना में राजनैतिक व आर्थिक सम्बल मिलने के कारण पहले–पहले पटना में जो कला शैली पनपी वह पटना शैली के नाम से विकसित हुयी बाद में यही कम्पनी शैली बनी। इस शैली के साथ ही कलकत्ता में काली भक्तों के मार्ग पर एक नई शैली का विकास हुआ, चित्रण कार्य के आधार पर यह शैली बाजार शैली कहलायी। कलकत्ता के काली घाटी के चित्रों के बनने का सिलसिला कलकत्ते में स्थित प्रसिद्ध काली मन्दिर सन् 1800 से लेकर 19300 तक रहा। कम्पनी शैली के प्रभाव राजा रवि वर्मा तो काली घाट शैली से जामिनी राय जैसे चित्रकार प्राप्त हुये।

देश की राजनीतिक उथल–पुथल के साथ ही कला में जो परिवर्तनशीलता आयी वो हमें बंगाल में देखने को मिली। कलकत्ता शिक्षा व साहित्य का प्रमुख केन्द्र बना। 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ई0वी0 हैवल प्रधानाचार्या होकर आये और भारतीयता के शुभ चिन्तक रहें। बंगाल स्कूल के प्रवर्तक अवनीन्द्र नाथ रहें उस समय वाश पद्धति का प्रयोग हुआ जबकि नन्दलाल बोस ने टेम्प्रा तकनीक का प्रयोग किया। अवनी बाबू के द्वारा प्रचालित शैली पहले बंगाल शैली तत्पश्चात् पुनर्रूत्थान शैली कहलायी। करीब 20वीं सदी के चतुर्थ दशक से संचार व प्रसार के साधनों से विकास तथा प्रयोग से चित्रकला में भी परिवर्तन हुआ। इसी समय पेरिस में भी इस प्रकार की परिस्थितियों में उभरे नये–नये वाद भारतीयों के मन पर छा गये। 19वीं सदी के अंतिम दशको तथा बीसवी सदी के प्रारम्भिक समय से ही भारतीय कला के अनेक प्रेणता हुये। आधुनिक कला में विभिन्न शैलियाँ टेक्निक तथा अभिव्यक्तियाँ सामने आने लगी जो आधुनिक कला की विशेषता है।

स्वतंत्रता के पश्चात कुछ कला संगइन एवं केन्द्र अस्तित्व में आने लगे थे जिनका उद्देश्य विभिन्न प्रवत्तियों को एक सूत्र में पिरोना, चित्र तथा चित्रकार को प्रोत्साहन देना आदि था। कुछ प्रमुख संगठन निम्न है–

इण्डियन आर्ट सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी ऑफ इण्डिया, आई फैक्स, भारत भवन, बाम्बे ग्रुप पैग है। कलाकारों के व्यक्तिगत शैली के आवेग में भारतीय चित्रकला को विश्व स्तर पर प्रस्तुत किया। अवनी बाबू, अर्मतासेरगिल, यामिनी राय, रवीन्द्र नाथ, रणवीर सिंह विष्ट, राम कुमार, एस. एच0 रजा, सतीश गुजराल, एफ0 एन0 सूजा, रामकिंकर बैज, जे0 स्वामीनाथन, एम0एफ0 हुसैन, लक्ष्मण पै0, ए0 रामचन्द्रन आदि प्रमुख आधुनिक कलाकार है।

भारतवर्ष की धार्मिक आध्यात्मिक, सांस्कृतिक व कला गतिविधियाँ युगों–युगों से विश्वकला के लिये प्रेरणा स्त्रोत रही है। इनकी महत्व की अमिट छाप एशिया के विभिन्न देशों की कला पर आज भी अंकित है। चित्रकला को धर्म प्रचार का उत्तम साधन माना जाता था। जब बौद्ध धर्म प्रचारक भारत से बाहर दूसरे देशों को गये तो वो अपने साथ रोल चित्रपटों को भी लेते गये। पूर्वी देशों के जनजीवन की कला का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं रहा है जो धर्म से समाहित न रहा हो। उनके आदर्श पूर्णतः भारतीय है। भारतवर्ष के चीन के साथ सांस्कृतिक भावात्मक एवं कला के सम्बन्ध पुरातन काल से प्रगाण रहे है। इन चित्र पटों के द्वारा ही चीन जापान, कोरिया, लंका, जावा, वर्मा, नेपाल, तिब्बत, अफगानिस्तान आदि देशों में बौद्ध धर्म एवं कला का प्रवेश हुआ।

नालंदा, तक्षशिला आदि बौद्ध धर्म के प्रमुख केन्द्र थे। नालंदा शिल्पकला के लिये प्रसिद्ध था वहाँ की मूर्ति शिल्प का प्रभाव जावा, सुमात्रा, तिब्बत, नेपाल, वर्मा, तक व्याप्त थी। तिब्बत के स्तूपों बिहारों मठों के स्थापत्य व शिल्प पर बौद्ध प्रभाव दर्शनीय है उनमें मुख्य रूप से भगवान बुद्ध, अवलोकितेश्वर, की प्रतिमाएँ दर्शाई गयी हैं। श्रीलंका के अनेक शिल्प व भित्त चित्रों पर अजंता कला का स्पष्ट प्रभाव है। यहीं प्रभाव सिगरिया की मूर्तियों एवं चित्रों पर दिखायी देता है। इतिहासकार तारानाथ के अनुसार– ''प्रत्येक देश अन्य देश की भाषा से अनिभिज्ञ था अतः बौद्धकला को ही बौद्धधर्म के प्रसार का श्रेय प्राप्त हुआ।''

लारेंस विनियान ने लिखा है कि– ''एशिया की कला का इतिहास बौद्धकला के इतिहास से उसी प्रकार सम्बद्ध है जिस प्रकार यूरोप की कला का क्रिश्चियन धर्म से है। विश्व भर में सर्वाधिक सुन्दर कहें जाने वाले एशिया भर के मठ, मन्दिर भारतीय कला के अस्तित्व को आज भी संरक्षित एवं जीवित बनाये हुये है। चीनी चित्रकला पर बौद्धकला के सुप्रभावों का उल्लेख करते हुये डॉ0 चाउसियांगसूआंग ने ''चीनी बौद्ध धर्म का इतिहास नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि बौद्ध धर्म के चीन में आने के बाद हमारी चित्रकला को नूतन प्रोत्साहन मिला। चित्रकारों ने बौद्ध धर्म को नये भाव दिये।'' वांग वी और वू टाउ जू द्वारा चीन में टुंग हंग और कांसू प्रान्त के गुफा मन्दिरों में करूणा और त्याग के मानव जाति के कल्याण हेतु समर्पित हेतु बोधसत्व के चित्र अजन्ता के चित्रकला के आदर्शो से भिन्न नहीं है। चीन की भाँति जापान में बौद्ध धर्म जनजीवन का दर्शन बन गया था। यहाँ के तामानुशी, नो जू सी गुफा में सिद्धार्थ के पूर्व जीवन के अनेक चित्र देखने को मिलते हैं। नारा के होरियोजी मन्दिर में भगवान बुद्ध की सर्वाधिक कृतियाँ है। बहुमुखी बहुनेत्री दैविक प्रतिमाएँ प्रतीक रूप में उनकी शक्ति की घोतक मानी गयी है।

आदिकाल से 10वीं शताब्दी तक चीनी और जापानी कला सामग्री के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वहाँ की चित्रकला, मूर्तिकला,एवं स्थापत्य कला उन्नतदशा में थी। जापान से प्राप्त दैविक प्रतिमाओं में देवी–देवता, ब्रम्हा–विष्णु, महेश, सरस्वती, पृथ्वी, इन्द्र, गणेश, यम, कुबेर आदि का अंकन शास्त्री निर्देशों के अनुसार हुआ है। चीन में त्रिमूर्ति की कल्पना ब्रम्हा की त्रिभूर्मि से मिलती जुलती है। भगवान बुद्ध चीन और जापान के प्रमुख देवता माने जाते है। जापान में ब्रम्हा और शिव की प्रतिमाएँ बेन्टर शाम आक्र फ्योडो के नाम से विख्यात है। चीनी चित्रकला में दैविक एवं दृश्य अंकन इस तत्व को उद्घाटित करते है कि चित्रकार झूठे वैभव और अभिमान से दूर धार्मिक भावनाओं और उच्च आदर्शो के समर्थक थे। तभी वह अपनी स्वतंत्र प्रतिभा के प्रदर्शन में निखार ला सके। शिल्प शास्त्र के अनुसार चित्रकला और मूर्तिकला में अन्तर नहीं है। दोनों ही कलाओं का उद्देश्य बाह्य सौन्दर्य का सृजन न कर रस अभिव्यक्ति का प्रतिपादन करना रहा है। रस की पूर्ति अलंकरण द्वारा नहीं की जा सकती। भारतीय व सुदूर पूर्व देशों की कला रस सिद्धान्त पर आधारित रही है जिसमें कलाकार की निजी मान्यताओं का कोई स्थान नहीं है। चीनी चित्रकार 'कु काई ची' के बनाये हुये चित्र आज भी विश्व विख्यात है।

कला एवं सौन्दर्य, सौन्दर्य चेतना तथा सौन्दर्य ललित कलाओं के विषय में अति प्राचीन काल से ही एशियाई देशों के दार्शनिकों ने अनेक मत प्रस्तुत किये और इस निष्कर्ष पर पहुँचे की कला मीमांशा के लिये किसी देश की ललित कलाओं का सामाजिक जीवन और चेतना से गहरा सम्बन्ध है। एशियाई देशों के चित्रकारों का उद्देश्य यथार्थ चित्रण एवं मानसिक कोतूहल कभी नहीं रहा। उन्होंने धर्म दर्शन की खोज पर अधिक बल दिय। वे दार्शनिक बनकर प्रकृति सौन्दर्य के रूप का अंकन करते थे। चीन तथा जापान के बाद फ्रांस की फारस कला भी महत्वपूर्ण है। फारस कला के प्राचीनतम् साक्ष्य प्रगैतिहासिक युगवक्र विस्तृत है। लगभग चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व में पकाई गयी मिट्टी के पात्र ईरान के दक्षिण पश्चिम सीमा के निकल सूसा में मिले हैं– ''अन्य महत्वपूर्ण कला जगरोज घाटी के लूरिस्तान नामक स्थान पर प्राप्त हुयी जिसमें कांस्य निर्मित पशु उपकरण तथा औजारे है। अखमनी, पार्थियन अब्बासी सल्जूख मंगोल तैमूरिया सफवी शासनों में विभिन्न कलाओं का निरन्तर विकास होता रहा है। इन सबके उदाहरण हमें पात्र चित्रण लघु चित्रण भित्त चित्र पुस्तक अलंकरण रंगीन टाईल्स तथा मणि कुट्टम आदि में मिलते हैं।''[5]

विश्व की कोई कला चाहे वह यूरोपीय एशियायी कोई भी हो कला तक व अहम से गौरवान्वित नहीं हो सकती। आवश्यकता इस बात की है कि कलाकार को अपनी अभिव्यक्ति पर पूर्ण विश्वास होना चाहिये और आत्मिक सौन्दर्य प्रदर्शन की छमता भी।''सुन्दर अभिव्यक्ति के लिये कलाकार के अन्तरप्रेरणा उसे प्रेरित करती है और

उसके अवलोकन मात्र से ऐसा प्रतीत होता है कि दर्शक उस स्थल का स्वयं अवलोकन कर रहा है।''[6]

निष्कर्ष

सत्य, अहिंसा, करूणा समन्वय और सर्वधर्म समभाव ये भारतीय ललित कला के वह उद्देश्य है जिन्होंने अनेक बाधाओं के बीच भी हमारी संस्कृति में वह शक्ति उत्पन्न की वह भारत के बाहर एशिया दक्षिण पूर्व एशिया में अपनी जड़ें फैला सके। ललित कलाओं ने हमारी संस्कृति को सत्य, शिव, सौन्दर्य जैसे अनेक सकारात्मक पक्षों को चित्रित किया है। इन कलाओं के माध्यम से ही हमारा लोक जीवन, लोक मानस तथा जीवन का आन्तरिक तथा आध्यात्मिक पक्ष अभिव्यक्त होता रहा है हमें अपनी इस परम्परा से करना नहीं अपितु अपनी परम्परा से ही रस लेकर आधुनिकता को चित्रित करना है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *चीनी चित्रकला एवं परम्पराएँ – डॉ0 सक्सेना, एस0एन0, पृ0– 121*
2. *भारतीय चित्रकला का इतिहास– डॉ0 वर्मा, अविनाश बहादुर, पृ0–24*
3. *इण्डियन पेन्टिंग्स अन्डर मुगल्स– डॉ0 ब्राउन पर्सी, पृ0–54*
4. *कैटलॉग ऑफ इण्डियन कलेक्शन, पार्ट 5 स्वामी आनन्द कुमार, पृ0–4*
5. *सुदुरपूर्व की कला– डॉ0 प्रताप रीता*
6. *चाइनीज पेंटिग्स– डॉ0 जेम्स चिल, पृ0–35*